April 13, 2015 Dainik Jagran

साझा चुनौती का सामना

पर्यावरण परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए हो रहे उपायों का विश्लेषण कर रही हैं

ज्योति पारिख

टिकाऊ विकास पर हुए रियो सम्मेलन में जलवायु परिवर्तन के मसले पर दुनिया के 100 देशों के प्रमुखों ने संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन को स्वीकार किया था, लेकिन आज 23 वर्ष बाद दुनिया एक बार फिर से चौराहे पर खड़ी है कि आगे के कदम किस तरह उठाए जाएं। कई देश चाहते हैं कि सभी देशों की जवाबदेही को सुनिश्चित करने के लिए उन्हें एक कानूनी संधि से जोड़ा अथवा बांधा जाए। जीवाश्म ईंधनों के बढ़ते प्रयोग से यह चिंता लगातार बढ़ी है कि किस तरह ग्रीन हाउस गैसों (जीएचजी) को घटाया जाए। वास्तव में अब बहस ग्रीन हाउस गैसों को कम करने से आगे बढ़ चुकी है और इसमें तकनीक, वित्त भी शामिल हो चुका है और यह भी कि किस तरह जलवायु परिवर्तन को अपने अनुकूल बनाया जाए। समझौतों की यह प्रकृति आने वाले समय में भारत के विकास के रास्ते पर भी अपना प्रभाव डालेगी। इसमें नवीकरणीय ऊर्जा और ऊर्जा का कुशल उपयोग भी शामिल है। यह दीर्घकालिक दृष्टि से लाभप्रद है, लेकिन जलवायु संधि के मद्देनजर इनकी तात्कालिक आवश्यकता अपेक्षाकृत महंगी पड़ सकती है, जो कि भारत बाद में करना चाहता है। अभी तक स्थिति यही रही है कि भारत अपनी क्षमता के लिहाज से जलवायु परिवर्तन के मसले से निपटता रहा है, लेकिन 2015 में पेरिस बैठक के बाद नया प्रारूप अस्तित्व में आ चुका है। इसके मद्देनजर हम ग्रीन हाउस गैसों को कम करने में अपने राष्ट्रीय योगदान की घोषणा कर सकते हैं।

उत्सर्जन में यह कटौती शेष विश्व के साथ भारत के भी हित में है। इसलिए हमें चाहिए कि वैश्विक स्तर पर शुरू हुई इस पहल को रोकें नहीं, बल्कि प्रोत्साहित करें। भारत की चिंता ग्रीन हाउस गैसों में राष्ट्रीय योगदान के नए स्तर को लेकर है। यह भारत की राष्ट्रीय विकास बाध्यताओं के प्रति चिंता पैदा करता है। बिजली की कमी के बावजूद भारत को लाखों घरों तक बिजली पहुंचानी है, स्वच्छता के मुद्दे का समाधान करना है, पानी, साक्षरता और स्वास्थ्य सेवाएं मुहैया करानी हैं। इसके लिए अतिरिक्त संसाधन, नई इमारतें, सड़क और बुनियादी ढांचे की जरूरत होगी, लेकिन इनसे ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में और इजाफा होगा। इसके लिए गरीबों के लिए किए गए एमडीजी यानी सहस्राब्दि विकास लक्ष्य के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को स्वयं अपने और संयुक्त राष्ट्र के मापदंडों के अनुरूप पूरा करना होगा। जो भी हो, उपरोक्त मजबूरियों के बावजूद भारत ने पहले ही महत्वाकांक्षी और साहसिक कदम उठाने शुरू कर दिए हैं। ग्रीन हाउस गैसों में उल्लेखनीय कमी के लिए उठाए गए साहसिक कदमों के तहत 2022 तक 100 गीगावाट सौर ऊर्जा, 60 गीगावाट पवन ऊर्जा, 15 गीगावाट पनबिजली और जीवाश्म ऊर्जा का लक्ष्य है। यह न केवल वर्तमान वैश्विक मापदंडों के अनुरूप हैं, बल्कि ऐतिहासिक भी हैं।

इसके अलावा कुछ अन्य प्रस्ताव भी हैं, जैसे कि मेट्रो को 27 शहरों तक पहुंचाना। बचत लैंप योजना, जिसके तहत सामान्य बल्बों की कीमत पर सीएफएल बल्ब उपलब्ध कराना। एक सौ स्मार्ट सिटी का प्रस्ताव, स्वच्छ भारत अभियान। पेट्रोल और डीजल पर सेस लगाना और स्वच्छ ऊर्जा के लिए जरूरी निवेश जुटाने के लिए कोयले पर नया उपकर लगाना। इनमें से अनेक प्रस्ताव बहुत महत्वाकांक्षी हैं। उन्हें महज यह कहकर खारिज नहीं किया जा सकता कि इनकी घोषणा पहले ही की जा चुकी है। इन्हें किसी न किसी रूप में लागू किया ही जाना चाहिए। भारत को उत्सर्जन में और कटौती लाने के लिए अतिरिक्त प्रयास करने होंगे। उत्सर्जन में कटौती के अनेक उपाय आपस में जुड़े होते हैं और परस्पर लाभकारी सिद्ध होते हैं, जैसे कि वायु प्रदूषण में कमी लाने से ऊर्जा सुरक्षा में वृद्धि होती है अथवा सरकार को अधिक राजस्व प्राप्त होता है।

भारत को यह स्पष्ट करने की जरूरत है कि उपायों का उद्देश्य कुछ भी अथवा उनके सह-लाभ कुछ भी हों, उन्हें उचित पहल के रूप में गिना जाना चाहिए-खासकर तब तक जब तक जीएचजी उत्सर्जन को कम नहीं कर लिया जाता। जब तक यह नहीं किया जाता तब तक भारत के पास देरी का अपना लाभ है। इस तरह पहले से घोषित योजनाओं को उत्सर्जन कटौती के राष्ट्रीय लक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इन तगड़े लक्ष्यों को पूरा करने के लिए पैसे और तकनीक की आवश्यकता होगी।

हम ऊंची कीमत पर सर्वश्रेष्ठ तकनीकों की ओर बढ़ सकते हैं, जैसे कि एलईडी लैंप। इस प्रक्रिया को समस्त विश्व के लिए जरूरी माना जाना चाहिए ताकि विकासशील देशों की प्रगति के साथ उत्सर्जन की मात्रा न बढ़ने पाए। उदाहरण के लिए बिजली की हमारी जरूरत बढ़ सकती है, लेकिन एलईडी को अपनाने से हम अधिक बिजली खपत को नियंत्रित कर सकते हैं। किसी तकनीक को अपनाना अपने लिए ही फायदेमंद है और इससे वैश्विक कार्बन प्रबंधन में मदद मिलती है। भारत को न केवल एमडीजी और समावेशी विकास को अपनाना है, बल्कि तकनीकों को अपनाने में भी पैसा निवेश करना है। हमें न केवल जीएचजी में कमी के लिए निवेश की आवश्यकता है, बल्कि पर्यावरण में बदलाव से उभरी स्थिति का सामना करने के लिए भी।

उदाहरण के लिए शहर आर्थिक विकास के इंजन होते हैं और कुछ दिनों का व्यवधान भी उनमें बड़े पैमाने पर नुकसान को जन्म दे सकता है। यह नुकसान जान-माल का भी हो सकता है और बुनियादी ढांचे का भी। शहर बाढ़, सूखे (पानी की कमी), तूफान, अत्यधिक बारिश, तापमान में उतार-चढ़ाव, साइक्लोन जैसी समस्याओं से कभी भी जूझ सकते हैं। आज के दौर में शहरों के लिए पर्यावरण परिवर्तन के प्रति अनुकूलता कायम करना एक बड़ी चुनौती के रूप में देखा जा रहा है। श्रीनगर और विजाग में हाल की घटनाओं में यह देख भी चुके हैं। हमें इसके लिए पहले से तैयार होना होगा। इसी तरह गांवों के लिए भी पर्यावरण परिवर्तन के प्रभावों को समझना होगा। इन क्षेत्रों में कृषि पर्यावरण परिवर्तन से खास तौर पर प्रभावित होती है। फसल चक्र में हो रहे परिवर्तन को हम साफ तौर पर देख सकते हैं जो कि हिमालयी राज्यों हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड आदि की पारिस्थितिकी में हो रहे बदलाव का परिणाम हैं। इसके अतिरिक्त जंगलों में लगने वाले आग अथवा गैर-वनीय उत्पादों के नुकसान को भी देखा जा सकता है। स्थिति यही है कि तमाम ग्रामीण रोजगार कृषि पर ही निर्भर हैं। यह तमाम गैर कृषि अथवा कृषि से जुड़ी गतिविधियां जलवायु परिवर्तन के कारण प्रभावित हुई हैं। भारत को चाहिए कि वह इस तरह हो रहे विविध नुकसानों की रिपोर्ट तैयार करे ताकि सभी राज्यों को इसके बारे में प्रशिक्षित अथवा जागरूक किया जा सके। स्वाभाविक तौर पर वैश्विक जलवायु कोष इन नुकसानों की भरपाई करने की दिशा में कुछ हद तक कारगर हो सकता है।

(लेखिका इंटीग्रेटेड रिसर्च एंड एक्शन फार डेवलपमेंट की एक्जीक्यूटिव डायरेक्टर हैं)

response@jagran.com

उचित पहल

◆ भारत को यह स्पष्ट करने की जरूरत है कि उसके उपायों का उद्देश्य कुछ भी अथवा उनके सह-लाभ कुछ भी हों, उन्हें उचित पहल के रूप में गिना जाना चाहिए